इकाई–1

भारत में सामाजिक कल्याण का विकास
(Evolution of Social Welfare in India)

पाठ संरचना (Lesson Structure)

1.0 उद्देश्य (Objective)

1.1 परिचय (Introduction)

1.2 प्राचीनकालीन व्यवस्था (Ancient Period)

1.3 मध्यकालीन व्यवस्था (Medieval Perido)

1.4 ब्रिटिशकालीन (British Period)

1.5 स्वतन्त्र भारत (Independent India)

1.6 भारतीय संविधाान के अन्तर्गत सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित प्रावधान (Provisions of Social Welfare in Indian Constitution)

1.7 सारांश (Summary)

1.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1.0 उद्देश्य (Objective)

सामाजिक कार्य मनुष्यों द्वारा ही सम्पादित होते हैं । मानव कल्याण को सबसे श्रेष्ठ धर्म बताया गया है । भारत में प्राचीन काल से ही यह परम्परा रही है कि सबों को सहायता प्रदान करना । इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य विद्यार्थियों को भारत की प्राचीन काल से चली आ रही सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित बातों से परिचित कराना है ।

1.1 परिचय (Introduction)

लोक कल्याणकारी कार्य हमारे देश में प्राचीन काल से चली आ रही है । अतः इस पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों को प्राचीनकालीन, मध्यकालीन, ब्रिटिशकालीन तथा स्वतन्त्र भारत में सामाजिक कल्याण के कार्यों से सम्बन्धित बातों की चर्चा की गई है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद संविधान के अन्तर्गत भी सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित अनेक प्रावधान किये गये हैं । संविधान की प्रस्तावना तथा इसके चौथे भाग में समाज कल्याण के लक्ष्य वर्णित किये गये हैं । संविधान में र्णित इन प्रावधानों की क्रियान्विति के लिये ही सामाजिक प्रशासन कार्यरत हैं । सामाजिक प्रशासन के माध्यम से इन वर्गों के लिये योजना निर्माण, संगठन तथा क्रियान्वयन की प्रक्रियाएँ शुरू की गई है । संविधान में संकल्पित उक्त आदर्शों का क्रियान्वयन सामाजिक प्रशासन का मूल दायित्व है । यदि सामाजिक प्रशासन इन सामाजिक कल्याण के आदर्शों को क्रियान्वित न करे तो ये आदर्श संविधान के पन्नों तक ही सीमित रह जायेंगे ।

1.2 प्राचीन काल में सामाजिक कल्याण (Social Welfare in Ancient Period)

भारतवर्ष एक विशाल देश है । इसमें प्रारम्भ से ही विभिन्न जातियों, भाषाओं, बोलियों और सामाजिक कार्यों से सम्बन्धित सभी कल्याण के कार्यों का संगम रहा है । भारतीय समाज की इन विविधताओं में संस्कृति की एकता पायी जाती है । यहाँ के निवासी कर्म और उसके फल में विश्वास रखते हैं । भारतीय समाज में अन्य वर्गों के साथ जनजातियों, दलितों, महिलाओं और पिछड़ा वर्ग का अस्तित्व पाया जाता है ।

प्राचीन काल से समाज कल्याण का इतिहास हमारे देश में देखा जा सकता है । अनादिकाल से ही मानव अनेकानेक समस्याओं से जूझता आया है । वैसे व्यक्ति जो मुसीबत में हैं, समाज की जवाबदेही उनके प्रति और अधिक बढ़ जाती है । अतः प्राचीन काल से ही पुर्नजन्म तथा परलोक की मान्यताओं में विश्वास रखने वाले प्राचीन भारतीय मनीषी और चिन्तक प्रत्येक जीव-जन्तु की रक्षा तथा कल्याण का उपदेश देते थे । भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा धर्म, मानवतावाद तथा आध्यात्मवाद की धूरी पर टिके थे । प्राचीन काल से ही मदद का तरीका था 'अर्थ', 'विद्या' तथा 'अभय' । ये तीन प्रकार के दान माने जाते थे । 'अर्थ' से तात्पर्य पैसा, 'विद्या' से तात्पर्य सही जानकारी प्रदान करना तथा 'अभय' से तात्पर्य निडर से था । कौटिल्य (चाणक्य) ने भी अपनी पुस्तक ''अर्थशास्त्र'' में यह स्पष्ट किया है कि गरीब, निराश्रित तथा वृद्ध जनों की रक्षा करना राज्य का पुनीत कर्त्तव्य है ।

इसी प्रकार अशोक (तीसरी सदी ईसा पूर्व, 320-184 बी०सी०) ने कलिंग युद्ध के पश्चात् (जिसमें इतने व्यक्तियों का रक्त बहा था कि सम्राट अशोक का भी मन व्यथित हो उठा) राजशाही व्यवस्था छोड़कर अपना शेष जीवन मानव कल्याण में बिताया । सम्राट अशोक ने इसे शिलालेख में सभी बातों को दिखाया है । अशोक द्वारा स्थापित शिलालेख तथा स्मारक इस तथ्य के पर्याप्त प्रमाण हैं कि अशोक ने न केवल दीन दुखियों की सेवा की, बल्कि जनसाधारण को इस ओर प्रेरित करने के लिए संदेश भी लिखवाये थे ।

गुप्तकालीन समय (320-425 ए०डी०) में भी विकलांगों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था थी तथा उनके

कल्याण के लिये व्यवस्था (Workshop) की जाती थी । इस प्रकार उस समय भी लोगों का कल्याण करना, राज्य की प्रथम एवं सबसे महत्वपूर्ण कार्य थे ।

परन्तु राज्य एवं कुछ उदार संस्थान के अतिरिक्त भी समाज में कुछ ऐसी संस्थाएँ थी जिन्होंने कल्याण के कार्य को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । तीन महत्वपूर्ण संगठनों ने समाज कल्याण के कार्य को आगे बढ़ाया । ये संगठन थे-संयुक्त परिवार (Joint Family), जाति (Caste) एवं वर्ग (Community) । इन तीनों सामाजिक संस्थानों ने परिवार के सदस्यों के लिए कल्याण से सम्बन्धित अनेक कार्य किये । जैसे संयुक्त परिवार एक ऐसी छतरी जैसी थी, जो परिवार के वैसे सदस्यों को भी आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती थी, जो स्वयं किसी कारणवश कार्य नहीं कर पाते थे । विधवाओं, वृद्धों तथा बिना माँ बाप के बच्चों (Orphans) इत्यादि के लिये संयुक्त परिवार का अत्यधिक महत्त्व था । प्राचीन काल में, अत:, राज्य के साथ-साथ संयुक्त परिवार भी कल्याण से सम्बन्धित कार्यों के लिये जाना जाता है । परिवार का उत्तरदायित्व होता था कि वह संयुक्त परिवार के सारे सदस्यों के कल्याण को ध्यान में रखकर सभी की मदद करे ।

जाति एक दूसरा सामाजिक संगठन था, प्राचीन काल में, जिसने जरूरतमंदों के लिये महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । इसके अलावा ग्राम पंचायत, जो हमारे देश में प्राचीन काल से चली आ रही है, समाज के विकलांगों, बीमारों तथा वृद्धों की जरूरतों को देखने का कार्य करती रही है ।

'जातक' में जो कहानियाँ कही गईं हैं, उनमें भी सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित कार्यों की चर्चा की गई है । यह ईसा के पाँच सौ (500) साल पहले जो बाते कही गईं थीं उसे स्रोतों से प्राप्त जानकारी से पता चलता है कि स्त्री एवं पुरुषों को दूसरों की मदद करने तथा सहायता करने की बात कही गई है, जिससे दूसरों को आगे बढ़ने का मौका मिले ।

ऋग्वेद में भी 'दानम' शब्द का इस्तेमाल किया गया है । 'दानम' (Charity) से तात्पर्य था कि जो भी धन लड़ाई जीतने में मिलता था उसे पूरे कबीले के परिवारों में बराबर-बराबर बाँट देना, जिससे सभी सुखी रहें । कुछ समय उपरान्त 'दानम' सिर्फ सामाजिक उत्थान का जरिया नहीं रह गया बल्कि इसे 'पुन्यम' (Merit) से जोड़ दिया गया ।

हिन्दू धर्म ने, प्राचीन काल में दान (Charity) एवं धार्मिक संस्थानों पर बहुत अधिक जोर दिया । जैसे, मन्दिर, मठ और धर्मशाला इत्यादि सामाजिक उत्थान के लिए महत्वपूर्ण संस्था माने जाते थे । आपातकाल के समय ये संस्थाएँ महत्वपूर्ण रूप से लोगों की मदद करती थी, और इतना ही नहीं उनकी जो भी समस्याएँ होती थीं, उनमें उनको मदद पहुँचाती थीं । इस प्रकार किसी भी तरह की विपदा के समय ये संस्थाएँ आगे आकर सभी वर्ग के लोगों की मदद करते थे । इसका सबसे उत्तम उदाहरण बुद्धिस्ट स्तूप जो भोपाल के पास सांची (मध्य प्रदेश) में स्थित है देखा जा सकता है । इस स्तूप में सभी दान देने वालों के नाम लिखे हैं, जिनकी संख्या कई सौ है । इससे यह साबित होता है कि प्राचीन समय में सामाजिक कल्याण के कार्य मुख्य रूप से धार्मिक संस्थानों द्वारा भी चलाये जाते थे, बल्कि अधिकतर धार्मिक संस्थानों पर ही आधारित थे । राज्य तथा व्यक्ति दोनों ही निर्वाण प्राप्त करने के लिए मानवता को सहायता प्रदान करते थे ।

इस प्रकार प्राचीनकाल में सामाजिक कल्याण के कार्यक्रम किसी न किसी रूप में चलाये जाते थे । अशोक महान से लेकर राज मालदेव, कृष्णदेव राय, राजा भोज, दानवीर हर्ष तथा विक्रमादित्य आदि भारतीय इतिहास के पन्नों ऐसे लोकप्रिय राजाओं के रूप में जाने जाते हैं जिन्होंने निराश्रितों की सेवा तथा रक्षा करने में अपनी रुचि का प्रदर्शन कर समाज कल्याण की दिशा में राज्य के संकल्प को प्रारम्भिक अभिव्यक्ति प्रदान की थी । भारतीय सामाजिक व्यवस्था भी समाज कल्याण की भावना के अनुरूप थी । अत: समाज की जीवन शैली मर्यादित थी । वर्ण-व्यवस्था की समाप्ति तथा जाति-व्यवस्था के उद्‌भव के बाद समाज कल्याण कार्यों का स्वरूप परिवर्तित होता चला गया ।

1.3 मध्यकालीन काल (Medieval Period)

मध्यकाल 11वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक माना जाता है । इस काल में मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई । तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी (13th and 14th Century) तक मुसलमान शासकों ने भारत में शासन किया, परन्तु वे भी सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित और उसी मंशा से उन्होंने शासन किया । खासकर धार्मिक तथा शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने काफी कार्य किये । मुस्लिम शासकों द्वारा वसूला जाने वाला 'जकात' जो एक धार्मिक कर था, समाज कल्याण के ध्येय से ही प्रेरित था । 'जकात' (Zakat) का तात्पर्य था कि जो भी आमदनी हो उसका कुछ प्रतिशत (%) दूसरों की मदद करने में खर्च करना । अर्थात् जो गरीब हैं उनकी मदद करना, स्कूल तथा मस्जिद बनवाना इत्यादि । ये सभी कल्याण से सम्बन्धित कार्य इस्लाम में पुण्य के कार्य माने जाते हैं ।

सामाजिक कार्यकर्त्ता फिरोज द्वारा किये गये कार्य जिसे दीवान-ए-खैरात (Dewan-e-Khairat) कहा जाता था, उसने समाज के काफी निचले वर्ग के लोगों के लिये मदद पहुँचाना तथा बीमारों के लिये अस्पताल बनवाने का कार्य किया । इस प्रकार के कार्यक्रम को इतना महत्त्व दिया गया कि मुगलों ने कल्याण से सम्बन्धित कार्यों के लिये अलग से विभाग ही खोल दिया ।

शेरशाह सूरी, अकबर और उसके बाद भी जितने मुगल शासक आये उन्होंने नीचे तबके के दबे हुये वर्गों के उत्थान के लिये काफी कार्य किये । उन्होने अपनी जनता के जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिये अनेक प्रयास किये और ये प्रयास उनके वास्तविक थे । जैसे-शेरशाह सूरी ने जगह-जगह सराय तथा पीने का पानी के लिये प्याऊ की व्यवस्था की थी । रास्ते तो बनवाये ही बल्कि उसे दोनों तरफ वृक्ष भी लगवाये, जिससे यात्रियों को कष्ट ना हो । उसने अनेक धर्मशालाओं का भी निर्माण करवाया । दिल्ली सल्तनत के अनेक सम्राटों ने समाज कल्याण की ओर पर्याप्त ध्यान दिया ।

मुस्लिम शासकों द्वारा वसूला जाने वाला धार्मिक कर 'जकात' जिसकी चर्चा हो चुकी है । समाज कल्याण के ध्येय से ही प्रेरित था । फिरोज तुगलक ने दो दीन-दुखियों की सेवार्थ दीवान-ए-खैरात नामक पृथक विभाग ही गठित किया था । औरंगजेब ने वैश्याओं का घर बसाने तथा नशा प्रवृति को रोकने के लिये भी अनेक प्रयास किये थे । इस प्रकार मध्यकालीन काल में मुगल बादशाहों ने भी समाज कल्याण की दिशा में काफी महत्वपूर्ण कार्य किये ।

1.4 ब्रिटिश काल (British Period)

भारत में अंग्रेजों के आगमन ने 18वीं शताब्दी के अन्त होते-होते सामाजिक कल्याण की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया । पश्चिमी विचारधारा का प्रवेश भारत की जमीन पर हुआ, जिसने समाज कल्याण के क्षेत्र में कुछ कार्यक्रम की शुरूआत हुई । क्रिश्चियन मिशनरियों ने स्वैच्छिक रूप से इसे आगे बढ़ाने का कार्य किया । वैसे व्यक्ति जो सामाजिक रूप से पिछड़े हुये थे, उन्हें धीरे-धीरे मदद देने की शुरूआत की ।

ईस्ट इंडिया कम्पनी (East India Company) जो भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से आई थी, परन्तु बाद में उन्होंने भारत में सत्ता हथियाने के ख्याल से, भारत में जो सामाजिक बुराईयाँ फैली हुई थीं, उनपर रोक लगानी चाही । 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में कुछ सामाजिक कुरीतियों को रोकने का प्रयास ईस्ट इंडिया कम्पनी ने किया । क्योंकि तबतक यह भारत में शासन पर अपना कब्जा कर रही थी ।

परन्तु 19वीं शताब्दी के मध्य में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इंग्लैण्ड के ताज को सारे अधिकार सौंप दिये तो यह समय सामाजिक सेवा के क्षेत्र में एक मील का पत्थर साबित हुआ । अर्थात् लोगों के कल्याण के लिये, जो बहुत ही जरूरतमंद से, सामाजिक कल्याण के कार्य को आगे बढ़ाया । क्रिश्चियन मिशनरियों ने भी इसमें महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । इनके कार्यक्रमों ने और प्रशासन की दृढ़ इच्छा ने सामाजिक कल्याण और विकास को एक नई सोंच और इच्छा शक्ति प्रदान की, जिससे देश के विशिष्ट (Elitist) वर्ग ने भी इधर ध्यान दिया ।

इसका नतीजा यह हुआ कि बहुत सारे सामाजिक सुधार आन्दोलन का उदय हुआ । अंग्रेजी शिक्षा, साक्षरता, प्रेस तथा यूरोप के पुर्नजागरण के पश्चात् भारत में भी प्रबद्ध (Elitist) लोगों द्वारा सामाजिक कुरीतियों से लड़ने का साहस उत्पन्न हुआ । परिणामस्वरूप ब्रह्म समाज (1816), आर्य समाज (1875), थियोसोफिकल सोसायटी (Theosophical Society, 1893), रामकृष्ण मिशन (1897) तथा अंजुमन हिमायती इस्लाम (1898) जैसी समाज सुधारक संस्थाओं का प्रादूर्भाव हुआ । बल्कि यह कहा जा सकता है कि ये संस्थाएँ समाज में फैली हुई कुरीतियों के विरोध में उभर कर सामने आईं ।

19वीं सदी के समाज सुधारकों में राजा राम मोहन राय (1772-1833), सर सैयद अहमद खाँ (1817-1898), ईश्वर चन्द्र विद्यासागर (1820-1891), स्वामी दयानन्द सरस्वी (1824-1883), दादा भाई नैरोजी (1825-1917), रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर (1837-1925), महादेव गोविन्द रानाडे (1842-1901), कुन्दुकुड़ी विरेशलिंगम पन्तुल्लु (1848-1919), गोपाल गणेश अगरकर (1856-1895), दान्दों केशव कर्वे (1858-1962), मदन मोहन मालवीय (1861-1946), रमा बाई (1862-1924), स्वामी विवेकानन्द (1863-1902), लाला लाजपत राय (1865-1928), गोपाल कृष्ण गोखले (1866-1911), सिस्टर निवेदिता (1867-1911), कामाक्ष्मी नटराजन (1868-1948), मोहन दास करमचन्द गाँधी (1869-1948) ओर भीम जी रामोजी अम्बेदकर (1893-1956), प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं ।

मुंशी प्रेमचन्द्र के भी कार्यों को भुलाया नहीं जा सकता । 19वीं शताब्दी में उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा सामाजिक कुरीतियों का बयान करके सबों के समक्ष यह रखा कि सामाजिक कुरीतियाँ कितनी खराब हो सकती हैं अत: उसे समाज से निकाल बाहर करना चाहिए ।

इस प्रकार इन सभी ने देश में गिरी हुई सामाजिक दशा को सुधारने का प्रयास किया और इन सभी का योगदान, अपने-अपने सामाजिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है । उनका कार्य किसी विशेष धर्म से सम्बन्धित नहीं था बल्कि मानवता के धर्म से सम्बन्धित था । इसका फायदा यह हुआ कि बहुत सारे सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित संस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ तथा इसमें अनेकों लोग जुड़ने लगे जिनमें समाज कल्याण की भावना थी और सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि यह किसी जाति, वर्ग या रंग भेद से नहीं जुड़ा हुआ था ।

इस प्रकार बहुत सारी सामाजिक कुरीतियों, रीति रिवाज, जो सदियों से हमारे देश में चली आ रहीं थीं, उनको समाज से हटाने में तथा समाज में बदलाव लाने में इन भारतीय समाज सुधारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इसका नतीजा यह हुआ कि, उपर्युक्त वर्णित समाजसेवी महापुरुषों तथा ब्रिटिश सरकार की अनुकूल (Favourable Attitude) प्रेरणा से बहुत सारे सामाजिक कल्याण हेतु सामाजिक विधान बनाये गये । इनमें से प्रमुख विधान हैं 1829 का रेगुलेशन नं० 17, जाति निर्योग्यता उन्मूलन अधिनियम 1856, हिन्दू विधवा पुर्नविवाह अधिनियम 1856, विवाह अधिनियम 1872, बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929, हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिकार अधिनियम 1937 इत्यादि प्रमुख हैं ।

इसके उपरान्त 20वीं शताब्दी के द्वितीय चरण में गाँधीजी ने, जिन्हें महात्मा गाँधी कहा जाने लगा था, बहुत सारे सामाजिक कुरीतियों, जैसे; छुआछूत, जाति प्रथा, स्त्रियों की गिरी हुई दशा इत्यादि के खिलाफ अपना अभियान शुरू किया । उन्होंने हरिजन सेवक समाज संघ, आदिवासी सेवा मंडल तथा कस्तूरबा गाँधी राष्ट्रीय मेमोरियल ट्रस्ट जैसे महत्वपूर्ण स्वैच्छिक संगठनों को भी आगे बढ़ाने का कार्य किया । वे कमजोर तबके के लोगों के लिये भी कल्याणकारी कार्य करने के लिये लोगों को जमा किया तथा उन्हें उत्साहित भी किया । खासकर निचली जाति की स्त्रियों और बच्चों के लिये आवाज उठाई । गाँधीजी ने बहुत सारे स्वैच्छिक संस्थाओं का भी निर्माण किया । गाँधीजी की महत्वपूर्ण बात यह थी कि उनकी बातें लोगों में तुरन्त अपना प्रभाव दिखाती थीं और लोक उनकी बातों को मानने के लिये बाध्य हो जाते थे, जो कि पहले बताये गये सामाजिक सुधारकों के प्रति नहीं देखा गया । इन सामाजिक सुधारकों की बातें पढ़े-लिखे मध्यवर्गीय लोगों तक ही सीमित थे ।

इसी समय 1887 की महत्वपूर्ण घटना यह भी है कि भारतीय राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन (Indian National Social Conference) की स्थापना की गई । यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ-साथ कार्य कर रही थी । इस सम्मेलन में, जहाँ पूरे भारतवर्ष से लोग आये थे, सामाजिक कुरीतियों से सम्बन्धित सभी समस्याओं जैसे जाति संरचना, छुआछूत, दहेज प्रथा, बाल विवाह, धर्म निरपेक्षता, विधवा विवाह, सती प्रथा स्त्रियों को सम्पत्ति में अधिकार इत्यादि पर विचार विमर्श किया गया । इस सम्मेलन ने समाज के सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित व्यक्तियों को आकर्षित किया । इसमें सामाजिक कार्यकर्त्ता, बुद्धिजीवी, सामाजिक सुधारक तथा राजनीतिक नेताओं ने भी भाग लिया और जनता में अपने विचारों को पहुँचाने में काफी हद तक सफल भी रहे ।

अतः यदि देखा जाये तो 19वीं सदी के अन्तिम चरण तथा 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरणों में एक संगठित ऐच्छिक संस्थाओं की शुरूआत हो गई थी, जिन्होंने सामाजिक सेवा के क्षेत्र में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था । ये संस्थाएँ ना सिर्फ सामाजिक सेवा एवं कल्याण से सम्बन्धित सहायक देने की बात पर सिर्फ जोर

नहीं दिया बल्कि शिक्षा को बढ़ावा देना तथा प्रौढ़ शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता, स्त्रियों का उत्थान तथा ग्रामीण कल्याण के लिये भी बात कही ।

पुनः 1935 में जब कुछ प्रान्तों में प्रमुख मंत्रालय बनाये गये तो उन्होंने भी इस दिशा में कुछ कार्यक्रम बनाये । इन विभागों ने सामाजिक कार्यों के कार्यक्रमों को समझा और उसके महत्त्व को जाना । इसके लिये अलग से राशि भी निर्धारित किये । शिक्षा एवं स्वास्थ्य के लिये अलग से राशि भी निर्धारित किये । शिक्षा एवं स्वास्थ्य के लिये अलग से राशि (Fund) रखी गई । इसके अलावा सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित कार्यों को महत्वपूर्ण मानते हुये राज्य को इस दिशा में कदम उठाने की बात भी कही गई । क्योंकि समाज कल्याण के कार्यक्रमों को पूरी तरह से स्वयंसेवी संस्थाओं पर नहीं सौंपा जा सकता है, अतः राज्य सरकार का भी दायित्व है कि वह समाज के कल्याण से सम्बन्धित कार्यक्रमों की ओर ध्यान दे ।

इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति (1947) के करीब एक सौ पचास साल पूर्व, ब्रिटिश शासन द्वारा जो भारत में सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित कार्यक्रम की शुरूआत की गई थी वह बहुत ही अलग तरह की थी । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि यह दर्शाता है कि उस समय कल्याणकारी सेवाओं का सम्बन्ध मुख्य रूप से शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्तियों की मदद करने से था और इसका निवारण लोग आपस में मिलकर करते थे । उस समय धर्म के नाम पर तो कल्याणकारी कार्य किये जाते थे बल्कि मानवता, वैज्ञानिक सोच इत्यादि भी इसके पीछे था ।

18वीं शताब्दी के अन्त में तथा 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में, ब्रिटिश शासन काल में, सामाजिक कल्याण के कार्यों को जिन व्यक्तियों द्वारा चलाया जाता था, उन्हें किसी प्रकार प्रशिक्षण नहीं था । अतः कार्य सही तरीके से आगे नहीं बढ़ाया जा सकता था । क्योंकि बाद में चलकर प्रशिक्षण को महत्वपूर्ण माना गया । यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि सामाजिक सुधार, सामाजिक प्रतिक्रिया (Action) और सामाजिक कार्य ये तीनों एक दूसरे से मिले हुये थे और एक ही व्यक्ति द्वारा चलाये जाते थे । कल्याणकारी कार्यों को ऐच्छिक संगठन ही करती थी, इसलिए धार्मिक एवं सामाजिक संगठनों से सम्बन्धित कार्य माना जाता था । अतः कुछ कल्याणकारी कार्यों को करने के लिये राज्य अनुदान (Grants in Aid) भी देती थी । ये अनुदान मुख्य रूप से स्त्रियों और बच्चों के कल्याण तथा विकलांगों को मदद के लिए दिये जाते थे ।

इस प्रकार ब्रिटिश काल में राज्य द्वारा चलाई जाने वाली बहुत कम संस्थाएँ थीं जो सामाजिक प्रक्रिया में लोगों को सहायता देती थीं । इसका मुख्य कारण यह था कि ब्रिटिश शासन का यह मानना था कि राज्य का पहला एवं मुख्य कार्य देश की रक्षा करना तथा शान्ति और व्यवस्था के साथ-साथ राजस्व इकट्ठा करना ना कि अन्य कार्यों की ओर ध्यान देना । परन्तु बाद के सालों में समाज कल्याण की दिशा में कुछ शुरूआत किये गये । खासकर शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में । परन्तु इन सामाजिक कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रमों की सिर्फ रूपरेखा ही तैयार की गई उनकी शुरूआत नहीं हो पाई । अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आधुनिक भारत ने अपने सामने एक आदर्श कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य रखा ।

1.5 स्वतंत्र भारत (Independent India)

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार द्वारा समाज कल्याण के क्षेत्र में किये गये प्रयास तथा उससे सम्बन्धित

विनिर्मित कानूनों, कार्यक्रमों तथा समाज कल्याण की प्रशासनिक संरचना सहित सभी बातों का ध्यान भारत सरकार ने किया । क्योंकि आज राज्य का कार्य सिर्फ राज्य की युद्धों से रक्षा एवं शान्ति एवं व्यवस्था कायम रखना ही नहीं है, बल्कि आज राज्य लोककल्याणकारी राज्य हैं । अत: भारत भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पूर्ण रूप से सभी तबके के लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिये कल्याणकारी कार्यों में जुट गया है ।

ब्रिटिश काल में सरकार द्वारा संचालित सामाजिक सेवाओं तथा कल्याण प्रशासन का दायरा बहुत सीमित था । सामाजिक-विकास से सम्बन्धित कोई पृथक् विभाग या मंत्रालय ब्रिटिश काल में नहीं था । 1858 में ब्रिटिश सरकार में सिर्फ चार (4) विभाग थे जो स्वतंत्रता के समय उन्नीस (19) हो चुके थे । सामाजिक कार्य से सम्बन्धित कार्य शिक्षा, स्वास्थ्य, गृह नागरिक सुरक्षा, खाद्य तथा श्रम विभागों द्वारा सम्पादित किये जाते थे । सरकार द्वारा संवैधानिक दायित्वों की पूर्ति तथा सामाजिक आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिये अब केन्द्रीय सचिवालय में कुल मिलाकर छोटे-बड़े लगभग 78 मंत्रालय एवं विभाग स्थापित किये गये ।

यद्यपि समाज कल्याण तथा समाज सुरक्षा के लिये अब एक पृथक 'सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय' कार्यरत है, तथापि समाज व्यवस्था से सम्बन्धित गतिविधियों, सामाजिक आवश्यकताओं तथा समस्याओं का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि यह कार्य एक मंत्रालय के बस का नहीं है । संघ तथा राज्य स्तर में सामाजिक प्रशासन को सहायता प्रदान करने के लिये शिक्षा विभाग, महिला एवं बाल विकास विभाग, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, खाद्य विभाग, पुलिस (गृह) विभाग, जेल विभाग, उद्योग विभाग, ग्रामीण विकास विभाग, कृषि विभाग, जनस्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग, पंचायती राज विभाग, स्थानीय स्वायत्त शासन (नगरीय) विभाग तथा श्रम विभाग इत्यादि के द्वारा भी अनेकानेक समाज कल्याण कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है ।

स्वतंत्रता के पहले भी अंग्रेजों ने भारत में महिलाओं से सम्बन्धित कुछ कानून बनाये थे, जैसे;

1. सती प्रथा निषेध अधिनियम, 1829 (Regulation No. XVII, 1829) । राजा राम मोहन राय के प्रयत्नों से 1829 में सती प्रथा निषेध अधिनियम बना ।
2. हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856 : 1856 के पहले हिन्दू विधवा पुनर्विवाह का प्रचलन नहीं था । उन्हें अपने मृत पति की सम्पत्ति में अधिकार भी नहीं था । ईश्वर चन्द्र विद्या सागर के प्रयत्नों से सरकार ने 1856 में यह अधिनियम पारित किया ।
3. बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929 (Child Marriage Restraint Act, 1929) : 1929 में हरविलास शारदा के प्रयत्नों, बाल विवाह निरोधक अधिनियम पास हुआ जिसे 'शारदा एक्ट' के नाम से भी जाना जाता है ।
4. हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम, 1937 (The Hindu Women's Right to Property Act, 1937) : इस अधिनियम द्वारा हिन्दू विधवा स्त्री को उसके पति के सम्पत्ति में अधिकार दिया गया ।
5. अलग रहने तथा भरण पोषण हेतु स्त्रियों का अधिकार अधिनियम, 1946 : किसी कारण से पति से अलग रहने की स्थिति में पत्नी को भरण-पोषण मिलेगा ।

स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं में कुछ और भी अधिक सुधार हुआ । सरकार, गैर सरकारी संगठनों (महिलाओं संगठनों सहित) तथा समाज सुधारकों के प्रयासों के परिणामस्वरूप आज भारतीय नारी की स्थिति मध्यकाल की नारी से कहीं ऊँची है । आज भारतीय नारी को अपना जीवन साथी चुनने का पूरा अधिकार प्राप्त है । उन्हें तलाक का अधिकार प्राप्त है । पारिवारिक सम्पत्ति में उन्हें उत्तराधिकार प्राप्त है ।

स्वतंत्र भारत में बने सामाजिक कानून ने महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिये अनेक कानून पारित किये गये, जैसे;

1. विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (Special Marriage Act, 1954) : इसके द्वारा कोई भी न्यायालय की सहायता से विवाह कर सकते हैं ।
2. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (Hindu Marriage Act, 1955) : इससे सभी जातियों के स्त्री पुरुषों को विवाह एवं तलाक का अधिकार दिया गया ।
3. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (Hindu Succession Act, 1956) : इसमें स्त्री पुरुषों को सम्पत्ति में समान उत्तराधिकार प्रदान किये गये हैं ।
4. हिन्दू नाबालिक तथा संरक्षता अधिनियम, 1956 (Hindu Minority and Guardianship Act, 1956) : इसमें पिता की मृत्यु के उपरान्त माता को संरक्षक बनने का अधिकार दिया गया ।
5. हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम, 1955 (Hindu Adoption and Maintanance Act, 1955) : इस अधिनियम में गोद लेने और स्त्रियों तथा उनके आश्रितों के भरण-पोषण की व्यवस्था है ।
6. स्त्रियों और लड़कियों का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम, 1956 (Suppreasion of Immoral Traffic in Women and Girls Act, 1956) : वेश्यावृत्ति और अनैतिक व्यवहार रोकने के लिए यह कानून पारित किया गया ।
7. दहेज निरोधक अधिनियम, 1961 (Dowry Portibilition Act, 1961) : दहेज प्रथा रोकने के लिए इसे पारित किया गया ।

इसके अतिरिक्त स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने महिलाओं के कल्याण के लिए और भी अनेक कार्यक्रम चलाये । जैसे, समान वेतन अधिनियम, 1979, मातृत्व हित लाभ अधिनियम, 1961 एवं 1976, पीड़ित नारियों के पुर्नवास क लिए प्रशिक्षण केन्द्र । यह योजना 1977 में बनाई गई । रोजगार तथा आय उत्पन्न करने वाली उत्पादन ईकाइयाँ । यह योजना वर्ष 1982-83 में नार्वे की अर्न्तराष्ट्रीय विकास संस्था के सहयोग से प्रारम्भ की गई । इस कार्यक्रम से गरीब ग्रामीण नारियों, अनुसूचित जाति व जनजाति जैसे कमजोर वर्गों की नारियों, युहू में मारे गये सैनिकों तथा मृत कर्मचारियों की विधवाओं को लाभ मिल रहा है । नारियों के लिए विकास निगम । यह 1986-87 के दौरान सभी राज्यों में निगम के गठन की योजना बनाई गई, जिससे नारियों को बेहतर रोजगार के अवसर मिले और वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र और आत्मनिर्भर हों ।

सामाजिक आर्थिक गति को तेज करने के लिये नारी शिक्षा की ओर सरकार ने कदम उठाये । यह कार्यक्रम वर्ष 1985-86 से प्रभावी है । प्रौढ़ नारियों के लिये शिक्षा के सघन पाठ्यक्रम की व्यवस्था की गई । केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा 1958 ईङ्क में शिक्षा के सघन पाठ्यक्रम प्रारम्भ किये गये, जिनका उद्देश्य था बाल सेविकाओं, नर्सों, स्वास्थ्य परिचारिकाओं, दाइयों और विशेषत: ग्रामीण इलाकों में परिवार नियोजन कार्यकर्त्ताओं का एक सक्षम और प्रशिक्षित वर्ग तैयार करना था ।

केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा केन्द्र स्तर पर तथा 28 राज्यों में स्वैच्छिक कार्यवाही ब्यूरो की स्थापना की गई । इनका कार्य नारियों तथा बच्चों पर होने वाले अत्याचारों का प्रतिरोध करना तथा अत्याचार एवं शोषण का शिकार हुये लोगों को निवारक तथा पुर्नवास सेवाएँ उपलब्ध कराना है । सरकार ने नारियों पर होने वाले अत्याचार को रोकने के लिए शैक्षिक कार्य की योजना भी चलाई । इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय महिला आयोग 31 जनवरी, 1992 में स्थापित की गई और राष्ट्रीय महिला कोष का भी गठन 30 मार्च, 1993 में किया गया ।

स्वतंत्रता के बाद सरकार सिर्फ स्त्रियों के लिये ही कल्याण के कार्य नहीं किये, बल्कि पिछड़े वर्ग के उत्थान के लिये भी अनेक कार्य किये । पिछड़े वर्ग से अभिप्राय समाज के उस वर्ग से है जो आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षिक निर्योग्यताओं के कारण समाज के अन्य वर्गों की तुलना में नीचे स्तर पर हों । पिछड़े वर्ग में अनुसूचित जाति और जनजाति के अतिरिक्त अनेक जातियाँ हैं, जिनकी गिनती भी आसान नहीं है । इन्हें ही समाज में ऊपर उठाने के लिये सरकार ने अनेक कल्याण के कार्यक्रम चलाये हैं ।

इस प्रकार महिलाएँ और बच्चे हमारी जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग हैं, और मानव संसाधन विकास का एक अतिमहत्वपूर्ण स्रोत है । महिला विकास के लक्ष्य महिलाओं और बच्चों के विकास तथा सशक्तिकरण से गहरे जुड़े हैं, क्योंकि 2001 के जनगणना के अनुसार महिलाएँ एवं बच्चे देश की कुल जनसंख्या का काफी बड़ा हिस्सा हैं । मानव संसाधन के रूप में महिलाओं का महत्त्व भारत के संविधान में भी स्वीकार किया गया है । भारत सरकार संवैधानिक प्रतिबद्धताओं के बल पर महिलाओं का चहुँमुखी कल्याण, विकास एवं सशक्तिकरण सुनिश्चित करने की दिशा में निरन्तर प्रयास करती रही है । जिसका वर्णन आगे दिया जा रहा है । महिला एवं बाल विकास विभाग का महिला एवं बाल विकास राज्य मंत्री के स्वतंत्र प्रभार के अधीन 30.01.2006 से मंत्रालय के रूप में उन्नयन, इस दिशा में उठाया गया महत्वपूर्ण कदम है ।

1.6 भारतीय संविधान के अन्तर्गत सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित प्रावधान (Provisions of Social Welfare in Indian Constitution)

ग्रेनविले ऑस्टिन (Granville Austin) के शब्दों में भारतीय संविधान सबसे पहले एक सर्वोत्तम सामाजिक दस्तावेज है । संविधान में अधिकतर सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित बातें सामाजिक परिवर्तन को ध्यान में रखकर की गई हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही भारत के लोगों से जो, संविधान की प्रस्तावना के अन्तर्गत, मौलिक अधिकार के अन्तर्गत तथा राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों के अर्न्तगत, वादा किया गया था उसे हमारे देश ने बड़ी सक्रियता से आगे बढ़ाने का कार्य किया । यह इस वचनबद्धता (Commitment) और सोंच के साथ रखा गया कि इसके द्वारा सामाजिक परिवर्तन को आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी । अत: सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित अनेक प्रावधान हमारे संविधान के अन्तर्गत रखे गये हैं जिनका वर्णन यहाँ किया जा रहा है ।

भारत एक संघीय राज्य है जिसकी प्रकृति पुलिस राज्य के विपरीत कल्याणकारी राज्य की है । डी० डी० बासु के अनुसार ''राज्य का यह कर्त्तव्य होगा कि वह प्रशासन में विधि के निर्माण में इन सिद्धान्तों का अनुसरण करे ।..... संविधान के अंधिकांश निर्देशों का ध्येय आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र स्थापित करना है जिसका संकल्प प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक सिद्धान्त और अन्य विशेष उपबन्धों में किया गया है । वस्तुत: भारतीय सामाजिक व्यवस्था का समाजवादी राज्य के बजाय समाज का समाजवादी ढ़ाँचा स्थापित करना, इसका प्रमुख उद्देश्य घोषित किया गया है ।'' इसलिए संविधान के अनुच्छेद 38 में भी कहा गया है कि राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय अनुप्रमाणित होता हो, की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा । अनुच्छेद 41 के अनुसार बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और अन्य अभवों की दशाओं में लोक सहायता पाने का अधिकार नागरिकों को प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए । जबकि अनुच्छेद 45 बालकों के नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था पर जोर देता है और अनुच्छेद 47 कहता है कि राज्य पोषाहार और जीवन स्तर को ऊँचा करने और लोक स्वास्थ्य में सुधार करनेका प्रयास करेगा और मद्य तथा मादक पेयों के औषधीय प्रयोगों से भिन्न उपयोगों का प्रतिषेध करेगा । इस तरह संविधान ने नीति निर्देशक सिद्धान्तों के माध्यम से राज्य के लिए सकारात्मक दिशा निर्देश की व्यवस्था की है जो लोक कल्याण प्रशासन का मार्ग प्रशस्त करते हैं ।

प्रत्येक अधिनियम के प्रारम्भ में एक प्रस्तावना रहती है । यद्यपि भारत के संविधान में प्रस्तावना को कोई विधिक महत्व नहीं प्रदान किया गया है, फिर भी, उसका बहुत बड़ा महत्त्व है । 'समाजवाद' शब्द को 42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया । प्रस्तावना में प्रयुक्त ''आर्थिक न्याय'' पदावली में समाजवाद की उपधारणा अर्न्तनिहित है । प्रस्तुत संशोधन इस 'आर्थिक न्याय' को एक निश्चित दिशा देता है । भारतीय समाजवाद लोकतांत्रिक समाजवाद की स्थापना के प्रयास में अग्रसर है । प्रस्तावना में, 'समाजवाद' शब्द के साथ 'लोकतांत्रिक' शब्द के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि समाज कल्याण की दिशा में यह एक नया कदम है ।

संविधान में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य कमजोर वर्गों का शैक्षिक तथा आर्थिक दृष्टि से उत्थान करने और उनकी सामाजिक असमर्थताओं को दूर करने के उद्देश्य से उन्हें सुरक्षा तथा संरक्षण प्रदान करने की व्यवस्था की गई है ।

संविधान में मौलिक अधिकार के अन्तर्गत अनुच्छेद 14 से लेकर 18 तक प्रत्येक व्यक्ति को समता का अधिकार प्रदान किया गया है । अनुच्छेद 14 में सामान्य नियम दिया गया है जो नागरिकों के बीच धर्म जाति, मूल वंश लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव करने का निषेध करता है । संविधान की प्रस्ताावना में परिकल्पित समता का आदर्श अनुच्छेद 14 में निहित है । अनुच्छेद 15, 16, 17 और 18 अनुच्छेद 14 में नीहित सामान्य नियम के विशिष्ट उदाहरण हैं । अनुच्छेद 15 धर्म, मूलवंश, जाति लिंग, जन्म स्थान के आधारों पर भेदभाव का प्रतिषेध करता है । अनुच्छेद 16 सार्वजनिक नियोजन के मामलों में अवसर की समानता की गारन्टी करता है । अनुच्छेद आश्रृश्यता का उन्मूलन करता है और अनुच्छेद 18 उपाधियों का उन्मूलन करता है ।

(क) अत: अनुच्छेद 14 के अनुसार भारत राज्य क्षेत्र में किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समानता

से अथवा कानून के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जायेगा । इसका तात्पर्य यह है कि कानून की दृष्टि में सब नागरिक समान हैं ।–न कोई छोटा है, न बड़ा, न कोई छूत है, न अछूत, न कोई कुलीन है न नीच । न्यायालय में सबके समान व्यवहार का अधिकार है ।

(ख) अनुच्छेद 15 में सामाजिक समानता का उल्लेख किया गया है । राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूल, वंश, लिंग जन्मस्थान के आधार पर अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर विभेद नहीं कर सकता है । दुकान होटल, सार्वजनिक भोजनालय, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थान में किसी नागरिक का प्रवेश निषिद्ध नहीं हो सकता और न उपर्युक्त आधार पर किसी नागरिक को कुंभों, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों तथा अन्य स्थानों पर जिन्हें राज्य से सहायता मिलती है उपयोग करने में भेदभाव नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार जीवन के किसी भी क्षेत्र में उपर्युक्त आधार पर नागरिकों के प्रति पक्षपात नहीं किया जा सकता है ।

लेकिन राज्य की स्त्रियों तथा बच्चों के लिये विशेष व्यवस्थाएँ करने का अधिकार प्राप्त है । संविधान के प्रथम संशोधन (1951 में) द्वारा राज्य को पिछड़े वर्ग के लोगों, अनुसूचित जातियों तथा आदिवासियों के विकास के लिए विशेष सामाजिक तथा शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान कर सकने का अधि कार दिया गया ।

(ग) अनुच्छेद 16 के अनुसार सरकारी नौकरियों के लिए अवसर की समानता प्रदान की गई है । यह स्पष्ट कर दिया गया है कि धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग और जन्मस्थान के आधार पर अथवा इनमें किसी एक के आधार पर राज्य विभेद नहीं करेगा ।

(घ) अनुच्छेद 17 के अनुसार अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है । यह प्रथा सदियों से भारतीय समाज पर एक कलंक है । यह घोषणा की गई है कि किसी भी रूप में यह निषिद्ध तथा दण्डनीय है । इसके लिये संसद द्वारा 1955 में 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम' पारित किया गया । सन् 1989 में इस कानून को अधिक कठोर बनाते हुये इसे 'अनुसूचित जाति व जनजाति निरोधक कानून 1989' का नाम दिया गया ।

(ड़) अनुच्छेद 18 के अनुसार पदवियों का अन्त कर दिया गया है । उपाधियों का अन्त इसलिये किया गया कि सरकारी पदवियों द्वारा समाज में वर्गभेद पैदा नहीं किया जाये ।

अनुच्छेद 23 और 24 में शोषण के विरुद्ध अधिकार का उल्लेख है, जिसके द्वारा भारतीय समाज में एक मनुष्य द्वारा दूसरे का शोषण नहीं किया जा सकता है । भारत का संविधान एक जनकल्याणकारी राज्य की स्थापना करता है । हमारे देश में सदियों से अनेक सामाजिक कुरूतियाँ फैली हुई थीं जिसके अन्तर्गत हरिजनों, खेतीहर श्रमिक तथा स्त्रियों पर अत्याचार किये जाते रहे हैं । चेन्नई में देवदासी प्रथा, राजस्थान में बाँदी प्रथा, बेगार, बलात् श्रम लेने तथ बच्चों से कठिनतम कार्य कराने इत्यादि की प्रथा भी प्रचलित थी । संविधान के निर्माताओं ने इस उपबन्ध के द्वारा इन सामाजिक कुरीतियों तथा प्रथाओं का अन्त करने का निर्णय लिया । अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम उम्र वाले बालकों या बालिकाओं को किसी कारखाने, खान या अन्य

किसी खतरनाक जगह और कार्यों में नहीं लगाया जा सकता । इन अधिकारों की परिगणना लोक कल्याणकारी राज्य की ओर संकेत करती है ।

वास्तव में शोषण के विरुद्ध अधिकार का उद्देश्य एक वास्तविक सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना करना है । शोषण के विरुद्ध वास्तविकता का रूप देने के लिये जुलाई 1975 में घोषित किया गया कि बंधक मजदूरी प्रथा कहीं भी हो, गैरकानूनी घोषित की जाती है । सन् 1996-97 में न्यायालयों ने बाल श्रम के निषेध पर जोर दिया था । परन्तु इसके लिये सामाजिक जागृति लाना भी आवश्यक है ।

संविधान के अनुच्छेद 29 के अनुसार अल्संख्यक के हितों का संरक्षण किया गया है । नागरिकों को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति को सुरक्षित रखने का पूर्ण अधिकार है । इसी अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि किसी एक के आधार पर किसी राजकीय अथवा शिक्षण संस्थानों में प्रवेश के सम्बन्ध में कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा ।

इस प्रकार मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत सामाजिक बुराईयों का अन्त करने का पूरा प्रयास किया गया है । भारतीय समाज में भयंकर बीमारी के रूप में व्याप्त छूआछूत, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, धर्मवाद और भाषावाद आदि सामाजिक बुराईयों से उत्पन्न भेदभाव को समाप्त करके सामाजिक समानता स्थापित की गई है ।

राज्य के नीति निर्देशक तत्व भारतीय संविधान की एक अनोखी महत्वपूर्ण विशेषता है । इन सिद्धान्तों की विषय-वस्तु में हमारे संविधान का और उसके सामाजिक न्याय दर्शन का वास्तविक तत्त्व नीहित है । इस व्यवस्था का उद्देश्य उस दिशा का निर्धारण करना जो भारत को लोक कल्याणकारी राज्य होने की ओर ले जाने की है ।

डा० राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार ''राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्तों का उद्देश्य जनता के कलयाण को प्रोत्साहित करने वाली सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है ।''

राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के समक्ष कुछ आदर्श रखते हैं । जिनका उद्देश्य जनता के सामाजिक आर्थिक और नैतिक हित की प्राप्ति है । संविधान की धारा 38 में कहा गया है कि ''राज्य, अधिक से अधिक प्रभावपूर्ण रूप में, एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना तथा सुरक्षा द्वारा, जिसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक न्याय की प्राप्ति हो, जनता के हित के विकास का प्रयत्न करेगा और राष्ट्रीय जीवन की प्रत्येक संस्था को इस सम्बन्ध में सूचित करेगा ।'' इस प्रकार राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का उद्देश्य सारे भारत की, जिसमें संघ, राजय, और स्थानीय संस्थाएँ सम्मिलित हैं, प्रजा के हित साधन का प्रयत्न करना है और लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है । इस प्रकार राज्य के नीति निर्देशक तत्व वे साधन हैं, जिनके माध्यम से भारतीय संविधान की आकांक्षाओं एवं कल्पनाओं को मूर्त रूप दिया जा सकता है और एक जनतंत्रात्मक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की जा सकती है ।

संविधान के चतुर्थ भाग में 36 से 51 तक की धाराओं में राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों का वर्णन है । इन्हें मुख्य रूप से चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ।

1. आर्थिक नीति से सम्बन्ध तत्व

2. सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी तत्व

3. अर्न्तराष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा सम्बन्धी तत्व

4. शासन सम्बन्धी तत्व

आर्थिक नीति से सम्बन्ध निर्देशक तत्वों का सार है–समाजवादी प्रजातंत्र राज्य की स्थापना, यद्यपि कहीं भी 'समाजवाद' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है । धारा 39, 41, 42, 43, 46, 47 और 48 में कहा गया है कि राज्य ऐसी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की चेष्टा करेगा कि सभी नागरिकों की आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी हो और उनका आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी हो और उनका आर्थिक शोषण ना हो । इसके अन्तर्गत समाज में आर्थिक वितरण इस प्रकार हो कि समस्त समाज का कल्याण हो और देश की पूँजी कुछ ही पूँजीपतियों के हाथों में केन्द्रित न हो ।

पुरुषों तथा स्त्रियों को समान कार्य के लिये समान वेतन मिले । पुरुषों तथा स्त्रियों के स्वास्थ्य और शान्ति का तथा बच्चों की सुकुमारावस्था का दुरुपयोग न हो । बालकों तथा नवयुवकों की शोषण और अनैतिकता से रक्षा हो ।

सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी निदेशक तत्व के अन्तर्गत राज्य समान्त देश के नागरिकों के लिये एक व्यवहार संहिता (Civil Procedure Code) बनाने का प्रयत्न करे ।

14 वर्ष की उम्र तक के बालकों के लिये नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करे । राज्य जनता के दुर्बलतम वर्गों जैसे : अछूतों एवं अनुसूचित वर्ग के लोगों तथा अनुसूचित आदिम जातियों की शिक्षा की व्यवस्था करे, ताकि वे उन्नति के पथ पर अग्रसर हों तथा सामाजिक अन्याय एवं आर्थिक शोषण से उनकी रक्षा हो सके । राज्य ऐसी व्यवस्था करे कि नागरिकों का स्वास्थ्य–सुधार हो । इस उद्देश्य से राज्य हानिकारक मादक पेयों तथा मादक वस्तुओं के सेवन पर प्रतिबन्ध लगाये ।

इस प्रकार संविधान के अन्तर्गत नीति निर्देशक तत्वों के द्वारा भी दलित वर्ग, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा तथा उनके आर्थिक हितों की रक्षा, शैशव एवं किशोरावस्था का शोषण ना हो, बीमारीवश, दुर्घटनावश अथवा वृद्धावस्था के समय राज्य की ओर से सहायता प्रदान करने की व्यवस्था की गई है ।

अत: संविधान के अन्तर्गत नीति निर्देशक तत्व लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना में सहायक हैं । ये संवैधानिक सत्ता के आधार हैं ।

सन् 1947 ई॰ में भले ही हमने राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली । परन्तु सामाजिक, आर्थिक क्रान्ति का मार्ग निदेशक तत्त्वों में बताया गया है ।

इस प्रकार सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित अनेक प्रावधान हमारे संविधान में किये गये हैं ।

1.7 सारांश (Summary)

इस पाठ्य संरचना में हमने प्राचीनकालीन व्यवस्था से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक तथा संविधान के अन्तर्गत

सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित सभी बातों का वर्णन किया गया है । प्राचीन काल से ही हमारे देश में सामाजिक कुरीतियाँ चली आ रही हैं । परन्तु इन बुराइयों को दूर करने के लिए भी अनेक व्यक्तियों ने तथा राज्य ने भी समय-समय पर प्रयास किये हैं । प्राचीन काल में दान के द्वारा अथवा धार्मिक कार्य के द्वारा लोग एक दूसरे की मदद करते थे । संयुक्त परिवार होने के कारण भी वृद्धावस्था में लोगों को परेशानी नहीं उठानी पड़ती थी । राज्य का मुख्य कार्य सिर्फ शांति एवं व्यवस्था बनाये रखना था । परन्तु धीरे-धीरे समाज में जैसे-जैसे बदलाव आने लगे और संयुक्त परिवार बिखरने लगा तो सामाजिक समस्याएँ उभर कर सामने आने लगीं ।

मध्यकालीन काल में मुगलों के आगमन से लोगों में असुरक्षा की भवना बढ़ी, स्त्रियों की दशा और भी खराब हुई । वैसे मुगलों ने भी अनेक सामाजिक उत्थान के कार्य किये परन्तु वे सभी सार्वजनिक रूप-रेखा के थे ।

अंग्रेजों के आगमन से लोगों में कुछ अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से लोक कल्याण की कार्यों के तरफ लोगों का ध्यान गया । मिशनकारियों ने भी सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित अनेक कार्यमों का शुभारम्भ किया । ब्रिटिश काल में कुछ मुख्य कानूनों का निर्माण किया गया, जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है ।

इस समय महात्मा गाँधी ने भी अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का अभियान चलाया उन्होंने स्वैच्छिक संस्थाओं को आगे आने के लिए कहा तथा सामाजिक बुराईयों को दूर करने में उनकी सहायता माँगी । इस प्रकार इस समय ऐच्छिक संस्थाओं की शुरूआत हो गई थी । ब्रिटिश सरकार ने भी इस दिशा में कदम उठाये, परन्तु इस दिशा में एक शासक सरकार की आवश्यकता थी ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक कल्याण की दिशा में सरकार द्वारा अनेक महत्वपूर्ण कानूनों का निर्माण किया गया । अनेक प्रशिक्षण केन्द्र बनाये गये । नारी शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिये सशक्त कदम उठाये गये । अनेक निगमों एवं बोर्डों की स्थापना की गई । सिफ़ स्त्रियों के लिए ही नहीं बल्कि पिछड़े वर्गों के लिए भी अनेक कार्यक्रम चलाये गये ।

इन सभी कल्याण के कार्यों को सही दिशा प्रदान करने के लिए हमारे संविधान में भी अनेक प्रायोजन किये गये हैं । भारतीय संविधान के अन्तर्गत, सामाजिक कल्याण के लिए अनेक प्रावधान किये गये हैं । मौलिक अधिकार एवं राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों के अन्तर्गत समाज कल्याण के कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए कई अनुच्छेदों में इसका प्रावधान किया गया है, जिसका वर्णन किया जा चुका है । मौलिक अधिकारों में जो समाज कल्याण के कार्यों का विवरण किया गया है यदि उसका उल्लंघन किया जाता है तो नागरिक सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय जा सकते हैं । मौलिक अधिकारों द्वारा सामाजिक बुराइयों का अन्त कर दिया गया है । भारतीय समाज में भयंकर बीमारी के रूप में व्याप्त सामाजिक बुराइयों से उत्पन्न भेदभव को समाप्त करके सामाजिक समानता स्थापित की गई है ।

जहाँ तक राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों का प्रश्न है, उन्हें कानूनी मान्यता नहीं प्राप्त है, परन्तु संविधान के अंग के रूप में इनका विशेष महत्व है । ये हमारे संविधान के आदर्शों की मंजिल के पथ-प्रदर्शक हैं । यह सही है कि मूल अधिकारों की भाँति राज्य के नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा लागू नहीं किये जा सकते, फिर भी इन्हें मान्यता देना राज्य का कर्त्तव्य बनाया गया है । नीति निर्देशक तत्त्वों के अन्तर्गत अनेक सामाजिक

कुरीतियों को दूर करने के प्रावधान रखे गये हैं । भले ही इसे न्यायालय की मान्यता नहीं प्राप्त है परन्तु यदि कोई भी सरकार इस पर ध्यान नहीं देती तो अगले निर्वाचन में मतदाताओं के सामने अवश्य उत्तर देना पड़ेगा ।

1.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. **समाज कल्याण से सम्बन्धित मौलिक अधिकारों का वर्णन करें ।**

   Discuss the main features of social welfare under the fundamental rights in Indian Constitution.

2. **राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत सामाजिक कल्याण की व्याख्या कीजिए ।**

   Explain the social welfare programme under the directive principles of state policy.

3. **''भारतीय संविधान में वर्ति राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों का भारत में एक आदर्श गणतंत्र और लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना में बहुत अधिक महत्व है ।'' विवेचना कीजिए ।**

   "Directive Principles of state policy are more important for the establishment of an ideal democracy and welfare state". Discuss.

1.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. **भारतीय शासन एवं राजनीति** : डा० ए० पी० अवस्थी, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
2. **भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन** : आर० सी० अग्रवाल, डा० महेश भटनागर, एस० चन्द एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
3. **भारत में लोक प्रशासन** : डा० बी० एल० फाड़िया, साहित्य भवन
4. **भारत का संविधान** : जय नारायण पाण्डे
5. **भारत का संविधान-एक परिचय** : ब्रज किशोर शर्मा, प्रेंटिस हाल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
6. **Social Welfare Administration Volume-2** : S. L. Goel, R. K. Jain, Deep & Deep Publications, New Delhi